**ओ३म्**

**“भाषा, ज्ञान और धर्म का आदि स्रोत वेद”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 आज संसार में अनेक भाषायें और अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हैं। मत-मतान्तरों को ही लोग धर्म मानने लगे हैं जबकि इन दोनों में अन्तर है। मत-मतान्तर इतिहास के किसी काल विशेष में किसी मनुष्य विशेष द्वारा वा उसके बाद उसके अनुयायियों द्वारा उसके नाम पर उनकी मान्यताओं के आधार पर चलाया जाता है जबकि धर्म का आरम्भ सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से होता है। मत-मतान्तर अपनी त्रुटियों व न्यूनताओं को छुपाने व उसे ईश्वर प्रदत्त बताने के लिए अपने अपने मत को धर्म कह देते हैं। धर्म शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत से ही हिन्दी व विश्व की अन्य भाषायें बनी हैं। हिन्दी में संस्कृत के अधिकांश शब्द बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के स्वीकार कर लिये गये हैं जबकि अन्य भाषायें में संस्कृत शब्दों के स्वरूप कहीं न्यून तो कहीं अधिक बदल गये हैं व कुछ उनके अपने निजी भी शब्द भी हैं। अंग्रेजी व संस्कृत एवं हिन्दी से इतर किसी भाषा में धर्म शब्द का पर्यायवाची शब्द नहीं है। धर्म का अर्थ होता है मनुष्यों के द्वारा श्रेष्ठ मनुष्योचित गुण, कर्म व स्वभाव का धारण वा आचरण। इसमें सृष्टिकर्ता व जगतपति ईश्वर का यथार्थ ज्ञान व उसके गुणों को जानकर उसकी उपासना करना भी सम्मिलित है। ईश्वर की यथार्थ उपासना का संसार में प्रमुख ग्रन्थ योग दर्शन है। योग आत्मा को परमात्मा से जोड़ने को कहते हैं। मनुष्य अपनी आत्मा को जब ईश्वर के गुण कर्म व स्वभाव का विचार कर परमात्मा में अपने ध्यान व चिन्तन को स्थिर करता है तो उसे ईश्वरोपासना कहते हैं। उपासना में ईश्वर के मनुष्य जाति पर उपकारों को भी उपासक द्वारा स्मरण किया जाता है। परमात्मा व आत्मा का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि माता-पिता के साथ पुत्र का होता है। जिस प्रकार माता-पिता की सत्य आज्ञाओं का पालन सन्तान के लिए धर्म होता है उसी प्रकार ईश्वर की वेदाज्ञाओं का पालन भी सभी मनुष्यों के धर्म होता है। यह भी ध्यातव्य है कि मनुष्य ने न तो ब्रह्माण्ड बनाया न पृथिवी, समुद्र, नदी, पर्वत, वन और अन्नादि पदार्थ। यह सब ईश्वर ने मनुष्यों के लिए बनाये हैं। मनुष्यों को भी ईश्वर ने ही बनाया है। मनुष्यों के लिए जिस जिस चीज की आवश्यकता थी सब ईश्वर ने मनुष्यों को इस सृष्टि के द्वारा दी हैं। देखने के लिए आंखें चाहिये तो आंखे दी। सुनने के लिए कान चाहियें तो श्रवण इन्द्रिय दी। इसी प्रकार से मनुष्यों को अपने कर्तव्यों का ज्ञान चाहिये। यह भी ईश्वर ने मनुष्यों को सृष्टि के आरम्भ में वेद ज्ञान देकर कराया है। वेद में ईश्वर ने तृण से लेकर प्रकृति, आत्मा व ईश्वर सभी का यथार्थ सत्य ज्ञान दिया है।

 मनुष्यों को स्वस्थ शरीर व उसमें स्वस्थ ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों की अत्यावश्यकता है। मनुष्यों कानों से सुनता और मुंह वा वाक् इन्द्रिय से बोलता है। सुनकर ही वह ज्ञान प्राप्त करता है। माता, पिता व आचार्य उसको ज्ञान कराने वाले मुख्य लोग होते हैं। माता-पिता व आचार्य भी अपने अपने माता-पिता व आचार्य से ज्ञान प्राप्त करते हैं। सृष्टि की आदि में परमात्मा अमैथुनी सृष्टि करते हैं। तब आरम्भ में युवा-स्त्री व पुरुष उत्पन्न होते हैं। उनके माता-पिता व आचार्य नहीं होते। परमात्मा ही उस अमैथुनी सृष्टि के सबसे योग्य चार ऋषियों को चार वेदों का ज्ञान देता है। वही चार ऋषि एक अन्य सबसे योग्य पुरुष ब्रह्मा जी चारों वेदों का ज्ञान कराते हैं। यह ऋषि ही अन्य सभी मनुष्यों के माता-पिता व आचार्य कहलाते हैं। इन्हीं से सभी मनुष्यों को भाषा का ज्ञान सहित वेदों की शिक्षाओं व कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाता है। आदि गुरु परमात्मा होता है। वह चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को ज्ञान देता है जिसमें भाषा व उसका ज्ञान भी मुख्य है। ज्ञान भाषा में ही निहित होता है। ज्ञान व भाषा को पृथक नहीं किया जा सकता। ज्ञान होगा तो भाषा अवश्य होगी। संस्कृत हर प्रकार से पूर्ण भाषा है जो ऋषियों को ईश्वर से प्राप्त हुई। लौकिक संस्कृत भाषा वैदिक भाषा का किंचित सरलीकरण है, यह बाद के ऋषियों व विद्वानों द्वारा किया गया है। अतः मूल भाषा भी वेदज्ञान के साथ ही प्राप्त हुई थी व वही किंचित विकारों के साथ व शुद्ध रूप में भी चली आ रही है। देश-काल, भौगोलिक कारणों व मनुष्यों के उच्चारण दोष आदि कारणों से इसमें किंचित परिवर्तन व विकार होना भी सम्भव होता है। अतः इसी प्रकार होते होते सृष्टि की उत्पत्ति के 1.96 अरब वर्ष हो जाने पर संसार में आज सहस्रों भाषायें अस्तित्व में आ गई हैं। सभी भाषाओं की उत्पत्ति प्रायः इसी प्रकार या ऐसे अनेक कारणों से होना सम्भव प्रतीत होती है।

 वेदों सहित वेदों पर ऋषियों के उपलब्ध ग्रन्थों का अध्ययन कर धर्म का सर्वांग शुद्ध रूप प्राप्त होता है। यह महाभारत काल व उसके कुछ बाद के वर्षों तक अस्तित्व व व्यवहार में रहा है। इसी को वैदिक धर्म कहते हैं। इसमें किसी अन्य मान्यता व सिद्धान्त को जोड़ने व मिलाने का कहीं अवकाश ही नहीं था। अतः किसी नये धर्म के प्रचलन का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। यह सत्य है कि महाभारत युद्ध के बाद वेद के सत्य अर्थों का यत्र तत्र लोप हो गया था। मूल वेद सुरक्षित रहे और उनकी मध्यकालीन व्याख्यायें भी विद्यमान रहीं। इनमें कुछ भ्रान्तियां थीं। ईसा की अट्ठारहवीं शती में ऋषि दयानन्द सरस्वती (1825-1883) का प्रादुर्भाव रहता है। वह अपने अपूर्व पुरुषार्थ, तप व विद्याबल से वेद व वेदज्ञान को प्राप्त करते हैं और वेदभाष्य सहित अनेक महत्वपूर्ण वैदिक ग्रन्थों की रचना करते हैं। ऋषि दयानन्द जी ने कोई नई बात नहीं कही है। उन्होंने जो कहा व लिखा है वह वही है जो सृष्टि काल के आरम्भ से देश देशान्तर में विद्यमान रहा था परन्तु उनके समय में वह सर्वत्र उपलब्ध नहीं था। उन्होंने उस अलभ्य वैदिक ज्ञान को स्वपुरुषार्थ से प्राप्त किया, अपने विवेक से उसकी परीक्षा व सत्यासत्य का निर्णय किया और उसे देशवासियों के सम्मुख सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने सबल युक्तियों से सिद्ध किया कि मनुष्यों का एक ही धर्म है और वह वेद प्रतिपादित कर्तव्य कर्म व आचरण ही हैं। संसार में जितने भी मत-मतान्तर चल रहे हैं वह अविद्या के काल में चलें जिनकी अब आवश्यकता नहीं है। मत-मतान्तरों में अनेक न्यूनतायें और इनकी अनेक बातें स्त्री व पुरुषों में भेदभाव भी करती हैं। ईश्वरोपासना और वायु-जल-पर्यावरण की शुद्धि हेतु यज्ञ का विधान व विज्ञान की आवश्यक बातों का ज्ञान भी इन मत-मतान्तरों की पुस्तकों में नहीं है। इनसे इन मत के वर्तमान आचार्यों और अनुयायियों की इस रूप में हानि हो रही है कि वह उचित रीति से ईश्वरोपासना एवं अन्य वैदिक कर्मों व अनुष्ठानों को न करने से उससे प्राप्त होने वाले लौकिक व पारलौकिक लाभों से वंचित हो रहे हैं। अतः सभी को वैदिक धर्म की ही शरण लेकर उसी को अपनाना व धारण करना चाहिये। वेदों के आधार पर एक ऐसे समाज, देश व विश्व का निर्माण किया जा सकता है जहां किसी से भेदभाव न होता हो, सब शिक्षित हों, सब अपने अपने कर्तव्यों का पालन करें, सबको उन्नति के समान अवसर मिले, जहां जन्मना जाति व वर्गवाद आदि न हो, लोग मनुष्यों को ही नहीं प्राणीमात्र को ईश्वर की सन्तान व अपना मित्र जानें आदि आदि। वेदों को अपनाकर व उनकी शिक्षाओं के द्वारा विश्व में सुख व शान्ति को स्थापित किया जा सकता है। सृष्टि के आरम्भ से महाभारतकाल पर्यन्त तक के 1.960848 अरब वर्षों तक भारत वा आर्यावर्त्त के आर्यों का ही विश्व में एकमात्र निरन्तर वैदिक धर्म पर आधारित चक्रवर्ती राज्य रहा है जहां सब मनुष्य आध्यात्मिक व भौतिक दृष्टि से सुखी थे। तब न कोई मत-मतान्तर था न उसकी आवश्यकता थी। आज भी नहीं है। आवश्यकता केवल विचार, सोच व चिन्तन बदल कर उचित चिन्तन व सत्य निर्णय करने की है।

 देश व विश्व में सुख व शान्ति की स्थापना को लक्ष्य में करके वेद का मंथन किया जाना चाहिये और इससे जो रत्न प्राप्त हों उसे देश व विश्व में विस्तार व वितरण कर एक सत्य मत धर्म की स्थापना करनी चाहिये। ऋषि दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश एक ऐसा ही प्रयास था। ऐसे मंथन पहले भी हुए व हुए होंगे। आज इसकी सर्वाधिक आवश्यकता है। ऋषि दयानन्द ने यह कार्य आरम्भ किया था। यह कार्य अधूरा पड़ा है। यह कार्य केवल ऋषि दयानन्द के अनुयायियों का ही कार्य नहीं है अपितु यह संसार के सभी मनुष्यों का अपना कार्य है। इसी से विश्व का कल्याण होने के साथ आध्यात्मिक व भौतिक उन्नति हो सकती है और उससे संसार के सभी लोग लाभान्वित हो सकते हैं।

 वेद धर्म के आदि स्रोत है। सत्य व यथार्थ धर्म वही है जो वेदों में कहा गया है। वेद से बाहर व उसके विपरीत जो कुछ है वह धर्म नहीं है। अन्य मत मतान्तरों की जो अच्छी बातें हैं वह वेदों से ही वहां गई हैं। उनसे किसी का कोई विरोध नहीं है। मत मतान्तरों की जो अपनी बातें हैं जिनसे संसार के लोगों में भेदभाव होता है और जो अपने मत को अच्छा व दूसरों को निम्नतर मानते हैं, उसमें परिवर्तन व संशोधन होना चाहिये। इसके लिए ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के अन्त में संसार के सभी मनुष्यों के मानने योग्य धार्मिक सिद्धान्तों को लिखा है जिसे उन्होंने **‘स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश’** नाम दिया है। उसकी भूमिका अतीव महत्वपूर्ण है। उसे लिखकर इस लेख को विराम देंगें। वह लिखते हैं ‘सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी। इसीलिये उस को सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिस का विरोधी कोई भी न हो सके। यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिस को अन्यथा जानें या मानें उस का स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिस को आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारी, पक्षपातरहित विद्वान मानते हैं वहीं सब को मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से ले कर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिन को मैं भी मानता हूं, सब सज्जन महाशयों (देश-विदेश के बन्धुओं) के सामने प्रकाशित करता हूं।’ इसके बाद ऋषि दयानन्द जी ने 51 विषयों पर सभी ऋषियों द्वारा मान्य स्वयं के सिद्धान्त लिखे हैं। इससे पूर्व मनुष्य किसे कहते हैं यह भी उन्होंने अपने प्रभावशाली शब्दों में बताया है। अन्य महत्वपूर्ण बातें भी कहीं हैं। इसे सत्यार्थप्रकाश में पढ़ना ही उचित होगा। वेद धर्म का आदि स्रोत है। सृष्टि के अन्त तक वेद ही सर्वाधिक प्रमाणिक रहेंगे। आने वाले समय में संसार के लोग वेदों का महत्व समझेंगे और अपने हित में इस अपनायेंगे। इसी के साथ इस चर्चा को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**“जीवात्मा का अनादित्व एवं उसका अनेक बार मोक्ष प्राप्त करना”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

ईश्वर, जीव तथा प्रकृति अनादि, नित्य, अविनाशी, अजर व अमर हैं। जीवात्मा ईश्वर से कर्मानुसार जन्म मरण प्राप्त कर कर्म-फलों को भोगता है। मनुष्य योनि उभय योनि है जिसमें मनुष्य पूर्व किये हुए कर्मों के फलों को भोगता भी है और नये कर्मों को करता भी है। मनुष्य जीवन में यदि मनुष्य वेदानुसार जीवन व्यतीत करते हुए समाधि अवस्था को प्राप्त कर ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है तो इससे वह मोक्ष का पात्र बन जाता है। ईश्वर साक्षात्कार के बाद वह अनेक बार समाधि अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार करता रहता है। प्रथम ईश्वर साक्षात्कार से आरम्भ होकर मृत्यु पर्यन्त वह जीवन मुक्त अवस्था में रहता है। मृत्यु होने पर उस जीवात्मा का मोक्ष होता है। यह मुक्ति अनेक जन्मों में किये हुए शुभ कर्मों का परिणाम होती है। मोक्ष में जाने के बाद अवधि पूरी होने पर उस जीवात्मा का मनुष्य योनि में पुनर्जन्म होता है। वह फिर नये सिरे से कर्म करना आरम्भ करता है और सम्भव है कि उसे पुनः मोक्ष मिल जाये व अनेक जन्म लेने के बाद उसका पुनः मोक्ष हो सकता है। ऐसा वैदिक साहित्य को पढ़ने से विदित होता है।

 संसार में जितनी भी प्राणी योनियां हैं उनमें सभी प्राणियों मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट व पतंग आदि में एक ही समान प्रकार का जीवात्मा है जो कर्मानुसार कभी मनुष्य तो कभी अन्य योनियों में जन्म लेते हैं। यह कर्म अनादि काल से चलता आ रहा है। हम सब भी अनादि काल से कर्मानुसार अनेक वा सभी योनियों में जन्म लेते आ रहे हैं। अनुमान से कह सकते हैं कि प्रायः हमारे सभी योनियों में अनेक अनेक बार जन्म हुए हैं। अनेक बार हम सांप, बिच्छू, सिंह व विषैले जीव वा प्राणी भी बने हैं। अनेक बार हमारा व सबका मोक्ष भी हुआ है। अतिश्योक्ति न होगी यदि यह भी कहें कि अनन्त अनन्त बार हमारे सभी प्राणी-योनियों में जन्म हुए हैं और अनन्त बार हमारा मोक्ष भी हुआ है। हम सभी मनुष्यों को इस पर विचार करना चाहिये और मोक्ष प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। मुमुक्षुओं के लिए किये जाने वाले कर्मों का उल्लेख सत्यार्थप्रकाश व दर्शन आदि ग्रन्थों में मिलता है। इन ग्रन्थों का अध्ययन कर ज्ञान लाभ करना चाहिये जिससे हमारी आत्मा की उन्नति हो।

 मोक्ष संसार में सब सुखों से बढ़कर है। ऐसा शास्त्र व हमारे ऋषि मुनि कहते आये हैं और इसकी प्राप्ति के लिए भीषण तप व पुरुषार्थ भी करते आये हैं। हम अपने इस मनुष्य जीवन में भी तो सुख की इच्छा करके साध्य सुखों के अनुरूप साधनों का प्रयोग कर उन सुखों को प्राप्त करते ही हैं। मनुष्य जीवन में हम जिन सुखों को सुख मान कर उनको प्राप्त करने के लिए सारा जीवन लगा देते हैं, उनमें से कुछ लोगों को कुछ सुख ही प्राप्त होते हैं और कईयों को अनेक सुख जिनकी उन्होंने इच्छा की हुई होती है, प्राप्त नहीं होते। कई लोग तो सुखों की प्राप्ति के लिए रात्रि दिन धनोपार्जन में ही अपना सारा समय गवां बैठते हैं। अपने इस जीवन की उन्नति व परलोक के सुधार पर उनका ध्यान जाता ही नहीं है। ऐसे सांसारिक लोग धनोपार्जन आदि में अत्यधिक पुरुषार्थ करते हुए कम आयु में ही मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। हमारे कुछ मित्रों के साथ भी ऐसी घटनायें हुई हैं। उनका उपार्जित किया हुआ धन उनके परिवारजनों के काम तो आता है परन्तु जिसने अच्छे व बुरे कार्यों से धन उपार्जित किया, वह व्यक्ति उस धन से प्राप्त हो सकने वाले सुखों से वंचित ही रहे और संसार से चले गये। पता नहीं की उनका परलोक बना या बिगड़ा? यह जीवन तो उस धन से सुख भोगने से पहले ही समाप्त हो गया।

 बुद्धिमान मनुष्य वही है जो अपने से अधिक बुद्धिमान व विवेकशील मनुष्यों की बातों को माने व उनका आचरण करे। सृष्टि के आरम्भ से आज तक ऋषियों व वेद के विद्वानों से अधिक बुद्धिमान व विवेकशील मनुष्य उत्पन्न नहीं हुए हैं। वह सब मनुष्यों को मुमुक्ष बनने की प्रेरणा करते रहे हैं। स्वयं के जीवन से भी वह इसका उदाहरण प्रस्तुत करते रहे हैं। स्वामी दयानन्द जी का जीवन हमारे सम्मुख है। हमें उनके जीवन से शिक्षा लेकर उनके अनुसार ही आचरण करना चाहिये। इसी में हमारा कल्याण व हित है। मोक्ष के विषय में अधिक जानकारी के लिए हमारा निवेदन है कि पाठक सत्यार्थप्रकाश का नवम् समुल्लास व ऋषि के अन्य ग्रन्थों सहित सांख्यदर्शन व उपनिषदों आदि का अध्ययन करें। इससे उनके आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नति होगी व आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिलेगी। ऋषि दयानन्द के कार्यों से सारे संसार के लोग ऋणी है। उन्होंने सारे संसार को वह ज्ञान दिया जो किसी मत-मतान्तर के ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं था। मत-मतान्तरों के आचार्य भी उस ज्ञान से वंचित थे जो ऋषि दयानन्द ने हम मनुष्यों को दिया है। इस दृष्टि से हम ऋषि दयानन्द से पूर्व हुए मनुष्यों की तुलना में अधिक भाग्यशाली हैं। जो मोक्ष आदि विषयक अनेक प्रकार का ज्ञान ऋषि दयानन्द जी ने हमें दिया है उनका यदि किसी मत में उल्लेख हुआ भी हो, तो भी लोग उसकी प्राप्ति के साधनों से अपरिचित थे। मोक्ष का स्वरूप, मोक्ष में जीवात्मा की स्थिति, मोक्ष की अवधि, मोक्ष में जीव का ईश्वर में लय नहीं होता, मोक्ष से वापसी आदि अनेकानेक समस्याओं का समाधान ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में किया है। इस पर भी यदि हम ऋषि द्वारा प्रदत्त ज्ञान से लाभ नहीं उठाते तो यह हमारी अपनी मूर्खता व अज्ञान है और इससे हमें ही हानि होनी है। अपने हित व अहित का विचार करना हमारा अपना काम है। आईये, आप और हम विचार करें। ओ३म् शम्ं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**